Indiapac



LATE MODERN HISTORY

सावरकर अछूतों का असली नायक

Written by India pac

सावरकर और दलित उद्धार: एक अनकहा सत्य बनाम आंबेडकर की राजनीति

विनायक दामोदर सावरकर का नाम भारतीय इतिहास में केवल एक क्रांतिकारी के रूप में ही नहीं, बल्कि एक प्रखर समाज सुधारक के रूप में भी अंकित है। जहाँ एक ओर मुख्यधारा का नैरेटिव केवल डॉ. बी.आर. आंबेडकर को ही दलितों का एकमात्र मसीहा मानता है, वहीं सावरकर के ठोस जमीनी कार्यों को अक्सर हाशिए पर धकेल दिया गया है। सावरकर का दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक था। उन्होंने हिंदू समाज की आंतरिक कुरीतियों, विशेषकर छुआछूत और जातिवाद को जड़ से मिटाने के लिए जो साहसी कदम उठाए, वे आज भी शोध का विषय हैं।

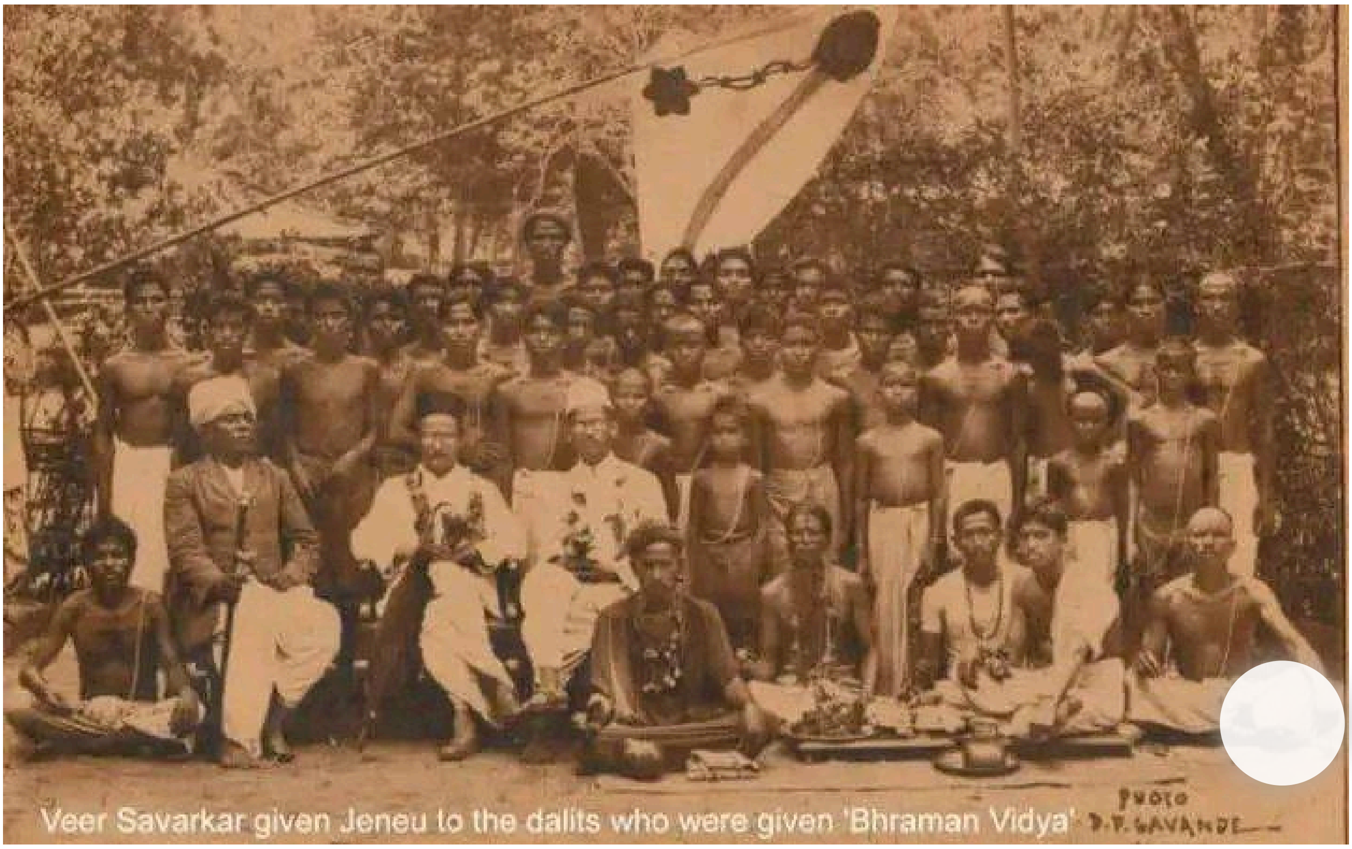
सावरकर का मानना था कि हिंदू समाज की कमजोरी का सबसे बड़ा कारण उसकी जातिगत विभाजन की नीति है। रत्नागिरी में अपने स्थानबद्धता (Interment) के दौरान उन्होंने 'पतित पावन मंदिर' का निर्माण करवाया, जहाँ दलितों सहित समाज के सभी वर्गों को प्रवेश और पूजा का समान अधिकार था। यह उस समय की एक

क्रांतिकारी घटना थी। सावरकर ने आर्य समाज के साथ मिलकर दलितों के उत्थान के लिए अभूतपूर्व कार्य किए। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि “जाति जन्म से नहीं, अपितु गुणों से होती है।”

सावरकर के सुधार कार्यों का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ था — दलितों को शिक्षा और धार्मिक अधिकार दिलाना। उन्होंने आर्य समाज के सिद्धांतों को आत्मसात करते हुए दलितों के ‘उपनयन संस्कार’ (जनेऊ धारण करना) पर जोर दिया। उनका तर्क था कि यदि वेद और ज्ञान सबके लिए हैं, तो दलितों को इससे वंचित रखना हिंदू धर्म के साथ अन्याय है। उन्होंने स्वयं कई सामूहिक उपनयन कार्यक्रमों का नेतृत्व किया, जहाँ दलितों को मंत्रोच्चार के साथ जनेऊ पहनाया गया और उन्हें समाज की मुख्यधारा में सम्मानजनक स्थान दिलाया गया। सावरकर ने दलित बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किए और उन्हें तकनीकी व आधुनिक शिक्षा की ओर प्रेरित किया ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।

इसके विपरीत, यदि डॉ. बी.आर. आंबेडकर के दृष्टिकोण का विश्लेषण किया जाए, तो सावरकर समर्थकों का तर्क है कि आंबेडकर का झुकाव सुधार से अधिक राजनीति और अलगाव की ओर था। जहाँ सावरकर हिंदू धर्म के भीतर सुधार लाकर समाज को एक करना चाहते थे, वहीं आंबेडकर ने अंततः धर्म परिवर्तन का मार्ग चुना, जो हिंदू एकता के लिए एक गहरा आघात था। आलोचकों का मानना है कि आंबेडकर की नीतियां अक्सर विभाजनकारी राजनीति से प्रेरित थीं, जिसने दलितों को समाज की मुख्यधारा से भावनात्मक रूप से जोड़ने के बजाय उन्हें एक अलग पहचान और ‘विक्टिम हुड’ की राजनीति में उलझा दिया। सावरकर का ‘हिंदू राष्ट्र’ का सपना तभी पूर्ण हो सकता था जब अंतिम पंक्ति का व्यक्ति भी गर्व से स्वयं को हिंदू कह सके, और इसके लिए उन्होंने राजनीति नहीं, बल्कि सीधे समाज की जड़ों में सुधार किया।

सावरकर का योगदान यह है कि उन्होंने अस्पृश्यता को सात बेड़ियों (सप्तबन्दी) के रूप में परिभाषित किया और उन्हें तोड़ने का आह्वान किया। उनके लिए दलित उद्धार कोई चुनावी एजेंडा नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य शर्त थी। सावरकर के ठोस कार्य और उनकी दूरदृष्टि ही थी जिसने कई दलितों को स्वाभिमान के साथ जीने का मार्ग दिखाया, जिसे इतिहास के पन्नों में वह स्थान नहीं मिला जिसका वह हकदार था।



वीर सावरकर द्वारा महार बच्चों का उपनयन

विनायक दामोदर सावरकर: दलित उद्धार, शिक्षा और समाज सुधार के क्रांतिकारी स्तंभ

विनायक दामोदर सावरकर का सामाजिक दर्शन केवल एक राजनीतिक विचारधारा नहीं थी, बल्कि वह हिंदू समाज के पुनरुत्थान का एक पूर्ण खाका था। सावरकर ने महसूस किया था कि जब तक हिंदू समाज छुआछूत और जातिवाद की बेड़ियों में जकड़ा रहेगा, तब तक वह कभी भी एक शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बन सकता। रत्नागिरी में उनके स्थानबद्धता (1924-1937) के दौरान किए गए

कार्य भारत के सामाजिक इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण लेकिन कम चर्चित अध्यायों में से एक हैं।

सावरकर के भाषणों का ओज और सामाजिक संदेश

सावरकर के भाषण केवल शब्दों का संग्रह नहीं थे, बल्कि वे कुरीतियों पर प्रहार करने वाले अस्त्र थे। उनके भाषणों में तीन मुख्य बिंदु सदैव प्रमुख रहे:

सप्तबन्दियों का विनाश: सावरकर ने हिंदू समाज को कमजोर करने वाली सात बाधाओं — वेदोक्तबन्दी (वेदों के पठन पर रोक), व्यवसायबन्दी, स्पर्शबन्दी (छुआछूत), सिन्धुबन्दी (समुद्र यात्रा पर रोक), शुद्धबन्दी, रोटीबन्दी और बेटीबन्दी — को जड़ से खत्म करने का आह्वान किया। उनके भाषणों में तर्क होता था कि यदि "अस्पृश्यता नहीं मरती, तो हिंदू धर्म मर जाएगा।"

तर्कसंगत हिंदूवाद: सावरकर ने अपने भाषणों में स्पष्ट किया कि प्राचीन रूढ़ियां जो विज्ञान और मानवता की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं, उन्हें त्याग देना चाहिए। उन्होंने कहा था कि "छुआछूत ईश्वर का नहीं, बल्कि भ्रमित मनुष्यों का पाप है।"

संगठन और शक्ति: उनका प्रसिद्ध नारा था "हिंदुत्व को राजनीति दो और हिंदुओं का सैन्यीकरण करो।" लेकिन इस सैन्यीकरण की पहली शर्त थी — दलितों को बराबरी का हक देकर समाज को एकजुट करना।

शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य

सावरकर का मानना था कि शिक्षा ही वह एकमात्र माध्यम है जिससे दलित समाज अपनी हीन भावना से मुक्त हो सकता है। उन्होंने इसके लिए कई ठोस कदम उठाए:

दलितों के लिए स्कूल और छात्रवृत्तियाँ: रत्नागिरी में उन्होंने दलित बच्चों के लिए विशेष स्कूल खुलवाए। वे स्वयं उन स्कूलों में जाकर बच्चों को पढ़ाते थे और उनके माता-पिता को प्रेरित करते थे कि वे अपने बच्चों को पारंपरिक व्यवसायों के बजाय आधुनिक शिक्षा (Modern Education) की ओर मोड़ें।

तकनीकी शिक्षा पर जोर: सावरकर ने दलितों को केवल साक्षर बनाने के बजाय उन्हें तकनीकी और कौशल आधारित शिक्षा देने की वकालत की, ताकि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें और किसी उच्च जाति के रहमोकरम पर न रहें।

सांस्कृतिक शिक्षा: उन्होंने दलित बच्चों को संस्कृत के श्लोक और वेदों का ज्ञान देना शुरू किया, जो उस समय के कट्टरपंथियों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी।

दलित उद्धार और 'पतित पावन मंदिर' का निर्माण

सावरकर का सबसे बड़ा व्यावहारिक योगदान **'पतित पावन मंदिर'** (1931) था। यह केवल एक मंदिर नहीं, बल्कि एक सामाजिक प्रयोगशाला थी:

सामूहिक उपनयन और जनेऊ: सावरकर ने आर्य समाज के साथ मिलकर हजारों दलितों का शुद्धिकरण किया और उन्हें 'जनेऊ' धारण करवाया। उन्होंने तर्क दिया कि जनेऊ पर किसी विशेष जाति का एकाधिकार नहीं है, बल्कि हर उस व्यक्ति का अधिकार है जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

सह-भोज (Inter-caste Dining): सावरकर ने 'समता संघ' के माध्यम से सामूहिक भोज आयोजित किए जहाँ ब्राह्मणों और दलितों ने एक ही पंगत में बैठकर भोजन किया। यह उस समय के कट्टरपंथी समाज के मुंह पर

एक करारा तमाचा था।

पुरोहितवाद का अंत: उन्होंने दलितों को मंदिर में पूजा करने के लिए प्रशिक्षित किया और उन्हें 'पुरोहित' के रूप में नियुक्त करने की वकालत की।

सावरकर बनाम आंबेडकर: कार्य बनाम राजनीति

जहाँ डॉ. आंबेडकर ने दलितों की समस्याओं को एक कानूनी और राजनीतिक रूप दिया, वहीं सावरकर ने इसे एक सांस्कृतिक और सामाजिक सुधार के रूप में देखा। सावरकर के अनुयायियों का तर्क है कि आंबेडकर का दृष्टिकोण अक्सर ब्रिटिशों के साथ मिलकर हिंदुओं को विभाजित करने वाला रहा, जबकि सावरकर ने "अछूतों" को यह सिखाया कि वे हिंदू समाज का अभिन्न हिस्सा हैं। सावरकर ने उन्हें धर्म परिवर्तन के विनाशकारी मार्ग से बचाकर अपनी जड़ों से जोड़े रखा। सावरकर के अनुसार, दलितों का कल्याण राजनीति से नहीं, बल्कि सामाजिक एकता और विज्ञान पर आधारित शिक्षा से ही संभव था।

सावरकर ने अपने लेखों में लिखा था कि "जिस दिन एक अछूत को मंदिर में पुजारी नियुक्त किया जाएगा और एक ब्राह्मण उसके चरणों में सिर झुकाएगा, उस दिन हिंदू राष्ट्र वास्तव में स्वतंत्र होगा।" उनके ये कार्य सिद्ध करते हैं कि वे केवल एक क्रांतिकारी ही नहीं, बल्कि एक युगदृष्टा समाज सुधारक थे।



डॉ. आंबेडकर का राजनीतिक अवसरवाद: दलित उद्धार की आड़ में ब्रिटिश तुष्टीकरण और राष्ट्र-विरोध
भारतीय इतिहास के विमर्श में डॉ. बी.आर.

आंबेडकर को अक्सर निर्विवाद रूप से प्रस्तुत किया जाता है, किंतु उनके राजनीतिक जीवन के कई ऐसे अध्याय हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि उनके लिए 'दलित उद्धार' से अधिक महत्वपूर्ण 'ब्रिटिश वफादारी' और 'राजनीतिक सत्ता' थी। जहाँ सावरकर जैसे क्रांतिकारी समाज के भीतर से सुधार कर राष्ट्र को एकजुट कर रहे थे, वहीं आंबेडकर ने अक्सर ऐसे मार्ग चुने जो देश की अखंडता के विरुद्ध और अंग्रेजों के पक्ष में थे।

1. ब्रिटिश सत्ता के साथ घनिष्ठता और 'देश छोड़ो' आंदोलन का विरोध

आंबेडकर के राष्ट्रवाद पर सबसे बड़ा प्रश्नचिह्न तब लगता है जब हम 1942 के **'भारत छोड़ो आंदोलन' (Quit India Movement)** के दौरान उनकी भूमिका देखते हैं। जब गांधी, सावरकर और पूरा देश "करो या मरो" के नारे के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध सड़कों पर था, तब आंबेडकर ब्रिटिश वायसराय की **'एग्जीक्यूटिव काउंसिल' (Viceroy's Executive Council)** में लेबर मेंबर के रूप में शामिल थे।

ब्रिटिश वफादारी: उन्होंने सार्वजनिक रूप से भारत छोड़ो आंदोलन की आलोचना की और इसे "अनुत्तरदायी और पागलपन भरा" करार दिया।

उदाहरण: उन्होंने दलित युवाओं से आह्वान किया कि वे इस आंदोलन में भाग न लें। यह स्पष्ट रूप से सत्ता के लालच में अंग्रेजों के साथ खड़े होने का उदाहरण था, न कि राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का।

2. दलितों के नाम पर पृथक निर्वाचन (Separate Electorate) की जिद

1932 का **'कम्युनल अवार्ड'** और **'गोलमेज सम्मेलन' (Round Table Conferences)** आंबेडकर की राजनीति का प्रमुख केंद्र थे। यहाँ उन्होंने दलितों के लिए 'पृथक निर्वाचन' की मांग की, जिसका उद्देश्य हिंदू समाज को दो स्थायी हिस्सों में विभाजित करना था।

विभाजनकारी नीति: यदि गांधी ने अनशन करके 'पूना पैक्ट' के माध्यम से इसे न रोका होता, तो आज भारत के भीतर एक और 'पाकिस्तान' (दलितों के लिए अलग राजनीतिक इकाई) खड़ा हो गया होता। सावरकर ने इस पर

कड़ी आपत्ति जताई थी, क्योंकि वे जानते थे कि राजनीतिक आरक्षण से अधिक आवश्यक सामाजिक समरसता है, न कि समाज का स्थायी बंटवारा।

3. ब्रिटिश सेना में भर्ती और सुभाष चंद्र बोस का विरोध

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, जब नेताजी सुभाष चंद्र बोस 'आजाद हिंद फौज' बनाकर अंग्रेजों से लड़ रहे थे, तब आंबेडकर ने अंग्रेजों का समर्थन किया। उन्होंने दलितों को ब्रिटिश सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया।
उदाहरण: उन्होंने 'महार रेजिमेंट' के पुनर्गठन और ब्रिटिश युद्ध प्रयासों का समर्थन केवल इसलिए किया ताकि वे अंग्रेजों की गुड-बुक में बने रहें। उन्होंने कभी भी सशस्त्र क्रांति या सुभाष चंद्र बोस के संघर्ष का समर्थन नहीं किया, जो यह दर्शाता है कि उनकी प्राथमिकता ब्रिटिश साम्राज्य का स्थायित्व था, न कि भारत की पूर्ण स्वायत्तता।

4. संविधान सभा और 'मजबूरी' का राष्ट्रवाद

अक्सर कहा जाता है कि आंबेडकर ने संविधान लिखा, किंतु वास्तविकता यह है कि वे संविधान सभा में अपनी मर्जी से नहीं, बल्कि परिस्थितियों के कारण पहुँचे थे। उन्होंने स्वयं एक बार कहा था कि "यदि मुझे अवसर मिले, तो मैं इस संविधान को सबसे पहले जला दूँगा।" यह बयान उनके भीतर की उस कटुता को दर्शाता है जो राष्ट्र-निर्माण के प्रति उनके संदेहास्पद दृष्टिकोण को उजागर करती है।

5. सावरकर की तुलना में आंबेडकर की विफलता

सावरकर ने **'पतित पावन मंदिर'** बनाकर और **'उपनयन संस्कार'** के माध्यम से दलितों को आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से हिंदू समाज का अभिन्न अंग बनाया। सावरकर का सुधार "हृदय परिवर्तन" पर आधारित था। इसके विपरीत, आंबेडकर ने केवल "कानूनी सुरक्षा" और "आरक्षण" की राजनीति की, जिसने दलितों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के बजाय उन्हें एक "वोट बैंक" में तब्दील कर दिया।
निष्कर्ष: आंबेडकर ने अंततः बौद्ध धर्म अपनाकर हिंदू समाज को कमजोर किया, जो सावरकर के 'अखंड हिंदू राष्ट्र' के सपने के विरुद्ध एक राजनीतिक चाल थी। उन्होंने दलितों के उत्थान को एक ऐसे उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जिससे वे अपनी राजनीतिक जमीन सुरक्षित कर सकें और ब्रिटिश हुकूमत के विश्वसनीय बने रह सकें।
आंबेडकर की राजनीति अक्सर राष्ट्रहित से टकराती रही, जहाँ उन्होंने आजादी के दीवानों का साथ देने के बजाय वायसराय के बंगले में बैठना और अंग्रेजों की नीतियां बनाना श्रेयस्कर समझा।

←
एक समाज ऐसा भी

0

Article Rating

Subscribe

Connect with

Be the First to Comment!

Name*

Email*

Website

I'm not a robot

reCAPTCHA

Post Comment

0 COMMENTS